

## Short answer type question

### चार्वाक दर्शन का आचार-मीमांसा या नैतिक विचार:-

चार्वाक दर्शन एक जडवादी या भौतिकवादी दर्शन है। इस दर्शन के तत्वमीमांसीय विचार का उनके आचार मीमांसा पर भी प्रभाव पडा है। चार्वाक दर्शन के अनुसार व्यक्ति द्वारा इन्द्रिया सुखों का उपयोग ही मानव जीवन का लक्ष्य है। भारतीय दर्शन में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों का स्वीकार किया गया है। लेकिन चार्वाक दर्शन में काम को ही महत्त्वपूर्ण पुरुषार्थ माना गया है, और अर्थ को काम प्राप्ति के साधन के रूप में स्वीकार किया गया है। चार्वाक दर्शन धर्म और मोक्ष को अस्वीकार करता है। चार्वाक दर्शन का बहुत ही प्रसिद्ध कथन है:-

यावज्जी वेत् सुखं जीवेद् ऋहणं कृत्वा धृतं पिवेत् ।

भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ? ॥

अर्थात् जब तक जीये सुख से जीये, द्रव्य न हो तो ऋण लेकर धृत पीये, क्योंकि दे हके भस्म हो जाने के बाद फिर उसका आना असम्भव है। 'खाओ, पीओ और मौज करो' यही जीवन का लक्ष्य है। दुःख के भय से सुख का त्याग काना मूर्खता है। मांगने वाले भिड्डुओं के भय से क्या भोजन नहीं पकाया जाय ? कृषि को नष्ट करने वाले पशुओं के भय से क्या धान न रोपे जावें ?

चार्वाक दर्शन द्वारा धर्म का, कर्तव्य का , नैतिक मूल्यों का निषेध ही इस दर्शन के पतन का मूल कारण हो सकता है। व्यक्तिगत इन्द्रिय-सुख को जीवन का लक्ष्य मानकर नैतिक मूल्यों का निषेध करना मानव को पशुधरातल पर उतार देना है। बाद में सुशिक्षित चार्वाकों ने काम और अर्थ के अतिरिक्त नैतिक मूल्यों के रूप में धर्म को भी स्वीकार किया। वात्स्यायन के कम सूत्र में इन्द्रिय-सुख के साथ भावनात्मक तथा बौद्धिक सुख के उपभोग पर एवं नैतिक मूल्यों पर बल दिया गया है। उनके अनुसार काम और अर्थ अदि धर्म या नैतिक मूल्यों से अनुप्रमाणित न हो तो सारी व्यवस्था चरमरा जायेगी।

## जैन दर्शन का पंच महाव्रत:-

समयक् चरित्र के लिए जैन दर्शन में पंच महाव्रत का पालन आवश्यक है। ये है- **अहिंसा** (मन, वचन और कर्म से किसी को हानि न पहुंचाना) **सत्य** (मन, वचन और कर्म से सत्य) **अस्तेय** (मन, वचन और कर्म से किसी की वस्तु नहीं चुराना और किसी को उसके अधिकार या प्राप्तव्य से वंचित करना) **ब्रह्मचर्य** (मन, वचन, और कर्म से भोग-विलास का त्याग और भोग्य पदार्थों के संग्रह का त्याग)। जैन दर्शन का मानना है कि प्रत्येक जीवात्मा इस संसार में उच्चतम् चेतना की प्राप्ति हेतु प्रयत्नशील है, अतः हमें किसी प्राणी की हत्या करने या नुकसान पहुंचाने का कोई अधिकार नहीं है। “सत्य” को हितकारी और प्रिय भी होना चाहिए। जैन दर्शन में अहिंसा को बहुत ही व्यापक अर्थ में लिया गया है। यहां अहिंसा का अर्थ किसी को शारीरिक चोट न पहुंचाने के अतिरिक्त मानसिक चोट भी नहीं पहुंचाना है। इसके अतिरिक्त यहां अहिंसा का विधेयात्मक अर्थ भी लिया गया है, अर्थात् अहिंसा वह है जो जीव मात्र के प्रति प्रेम और दया की भावना। जैन दर्शन में दस धर्म के पालन पर भी जोर दिया गया है।- ये है- 1. क्षमा 2. कोमलता 3. सरलता (आर्जव) 4. सत्य 5. शैच (शरीर तथा आत्मा की सुद्धि) 6. संयम (शरीर तथा मन पर नियंत्रण) 7. तप 8. त्याग 9. आकिंचन्य (किसी पदार्थ में ममता न रखना) 10. ब्रह्मचर्य। इसके अतिरिक्त पूण्य कर्म तथा भुखे को भोजन देना, प्यासे को पानी देना, गरीब को वस्तु देना, साधुओं को आराम देना आदि भी धर्म बताए गये हैं।

इस प्रकार जैन धर्म में त्रिरत्न, पंच महाव्रत स्वयं दस धर्म के पालन से जीव के बन्धन का नाश होता है, उसके सारे दुःख समाप्त हो जाते हैं तथा उसे पुनर्जन्म नहीं लेना पड़ता। इस तरह जीव मोक्ष को प्राप्त करता है। मोक्ष की अवस्था में आत्मा अपनी चार पूणताओं अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त शक्ति और अनन्त आनन्द (शांति) को पुनः प्राप्त कर लेती है। इस अवस्था में वह संसार से आप उठकर सिद्धशीला में अनन्त काल तक निवास करती है।

## उपमान प्रमाण:-

पूर्व में अनुभूत वस्तु के सहश होने के कारण जहाँ किसी नई वस्तु का ज्ञान हो उसे उपमिति कहते हैं और उसके करण को उपमान प्रमाण कहते हैं। कोई व्यक्ति जिसने नील गाय नहीं देखा हो किन्तु यह सुना हो कि नील गाय, गाय के सहश होता है, जब बन में जाकर गाय-सहश पशु को देखता है और उसे यह ज्ञान होता है कि गाय सहश पशु नील गाय है तब उसे यह ज्ञान उपमान प्रमाण द्वारा होता है। उपमान में गाय और नील गाय का साहश्य ज्ञान करण है और 'गबय' गो-सहश होता है, इस वाक्य का स्मरण स्पष्टकारी कारण है। बौद्ध दर्शन उपमान का अन्तर्भाव प्रत्यक्ष में करते हैं, सांख्य और वैशेषिक इसे अनुमान में अन्तर्भूत मानते हैं, जैन इसे प्रत्यभिज्ञा के अन्तर्गत स्वीकार करते हैं। मीमांसक वर्वदान्ती इसे स्वतंत्र प्रमाण मानते हैं किन्तु उनकी उपमान की व्याख्या न्यायकृति व्याख्या से भिन्न है।

न्याय दर्शन के अनुसार उपमान एक मिश्रित प्रक्रिया है। 'नील गाय गाय सहश पशु है' इस उपदेश में शब्द की सत्ता है, नील गाय को देखकर उसमें गाय साहश्य का अनुभव प्रत्यक्ष के अन्तर्गत है, यह नील गाय है' इसमें पूर्वापदेश की स्मृति औश्र अनुमान की सत्ता है, किन्तु 'नील गाय पद वाच्य यही नील गाय पशु है, यह स्वतंत्र उपमान प्रमाण से ही सिद्ध होता है। महर्षि गौतम ने उपमान की निम्नलिखित परिभाषा दी है "प्रसिद्ध पदार्थों के समान धर्म से साध्य के साधन को उपमान-प्रमाण कहा जायेगा।" वात्साधन इस प्रमाण के महत्व की व्याख्या करते हुए कहते हैं इसके द्वारा हम बहुत से अहष्ट पदार्थों का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

## शब्द प्रमाण:- (Testimony or Authority)

यह प्रमाण न्याय दर्शन द्वारा प्रस्तुत चौथा प्रमाण है। यह एक स्वतंत्र प्रमाण है, इसे 'आप्त प्रमाण' भी कहते हैं। शब्द प्रमाण का अर्थ होता है किसी के शब्द का कथन को प्रमाण रूप में प्रस्तुत करना किन्तु यहां शब्द का मतलब किसी के भी द्वारा कहे गये कोई से भी शब्द नहीं है। न्याय दर्शन के अनुसार शब्द तभी प्रमाण बनते हैं जब ये यथार्थ, वास्तविक एवं विश्वास के योग्य हैं। ऐसे ही वचन न्याय दर्शन में आप्त वचन कहे गये हैं तथा इन्हें व्यक्त करने वाला 'आप्त' कहा गया है। महर्षि गौतम शब्द प्रमाण को परिभाषित करते हुए कहा है " आप्तोपदेशः शब्दः" अर्थात् आप्त का उपदेश (कथन) ही प्रमाण है। यहां 'आप्त' का अर्थ होता है जो सत्य को प्राप्त कर चुका हो अथवा सत्य तक पहुंच चुका है। अर्थात् जो पूर्णतः विश्वसनीय हो। ऐसे व्यक्ति अथवा ग्रन्थ द्वारा व्यक्त वचन नहीं आप्त वचन कहे जाते हैं। न्याय दार्शनिकों के अनुसार ऐसे वचनों पर सन्देह करने का कोई कारण नहीं होता, अतः ज्ञान प्राप्ति हेतु हम ऐसे वचनों को शब्द प्रमाण के रूप में ग्रहण कर सकते हैं।

**शब्द प्रमाण के दो प्रकार के भेद किये गये हैं-**

(1) दृष्टार्थ और अदृष्टार्थ (2) लौकिक और वैदिक।

जिस शब्द प्रमाण द्वारा ज्ञान का हम प्रत्यक्ष अनुभव कर सकते हैं, वह दृष्टार्थ प्रमाण है। जैसे यदि हमसे गुरुजी कहते हैं कि विश्व के चमत्कार के नाम से प्रसिद्ध पिरामिड मिश्र देश में स्थित है, तो यह दृष्टार्थ शब्द प्रमाण है क्योंकि हम मिश्र जाय इनका प्रत्यक्ष कर सकते हैं। अदृष्टार्थ शब्द प्रमाण में जहां हमें जो ज्ञान मिलता है उसका प्रत्यक्ष सम्भव नहीं हो सकता जैसे बृश्व का सृष्टा ईश्वर है।

लौकिक शब्द प्रमाण अनुरूपों द्वारा दिए गए प्रमाण है। जबकि वैदिक शब्द प्रमाण वेदों द्वारा प्रस्तुत प्रमाण है। भारतीय परम्परा में वैदिक शब्दों को पूर्वतः विश्वसनीय तथा पवित्र माना गया है। क्योंकि ये साक्षात् ईश्वर की वाणी हैं।

## समवाय (Inherence)

वैशेषिक दर्शन के अनुसार पदर्थों में कुछ योग ऐसे होते हैं जो कदापि पृथक् नहीं किये जा सकते। यदि इन्हें पृथक् करने की कोशिश की गई तो कम से कम एक अवश्य नष्ट हो जाता है जैसे तन्तु और कपड़ा अथवा मिट्टी और घड़े का सम्बन्ध। कपड़े से तन्तु को अलग करने पर तन्तु भले बच जाये पर कपड़ा अवश्य नष्ट हो जायेगा। इसी तरह घड़े से मिट्टी को अलग करने पर घड़ा जरूर नष्ट हो जायेगा। वैशेषिक दर्शन इस प्रकार के सम्बन्ध को समवाय सम्बन्ध कहते हैं। यह नित्य सम्बन्ध है। अवयव का अवयवी से, गुण या कर्म का द्रव्य से सामान्य का व्यक्ति से तथा विशेष का नित्य द्रव्य से नित्य सम्बन्ध होता है, इसलिए इसका सम्बन्ध समवाय कहलाता है। महर्षि कणाद के अनुसार समवाय सम्बन्ध कारण और कार्य के मध्य होता है। जैसे मिट्टी और घड़े के मध्य है। प्रशस्तपाद 'समवाय' की व्याख्या में कहते हैं यह वह सम्बन्ध है जो उन वस्तुओं में रहता है जिन्हें पृथक् नहीं किया जा सकता तथा जो आधार और आधेय में रहता है। वैशेषिक दर्शन के अनुसार समवाय प्रत्यक्ष गम्य तो नहीं है, इनका अनुमान द्वारा अवश्य ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

## वैशेषिक के अनुसार कर्म

कर्म भी द्रव्य पर आश्रित होता है। यह वस्तुओं के संयोग एवं विभाग को कारण है। कर्म मूर्त द्रव्यों में रहता है। विभु द्रव्यों में नहीं रहता। कर्म पांच प्रकार के होते हैं उत्क्षेपण (उपर फेंकना), अपक्षेपण (नीचे फेंकना), आकुंचन (सिकोड़ना), प्रसारण (फैलाना) और गमन (चलना) कर्म प्रयत्न मूलक द्रव्य में कुद समय के लिए प्रकट होता है। कर्म मूर्त द्रव्यों जैसे पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और मन में ही रहता है।

## अभाव (Non-existence)

वैशेषिक-सूत्र और भाष्य में छह भावात्मक पदार्थों का वर्णन उपलब्ध है। स्वयं महर्षि कणाद ने अभाव का वर्णन किया है, किन्तु उसे पदार्थ नहीं माना। बाद के वैशेषिकों ने उसे पदार्थों के रूप में मान्यता ही। अभाव नास्ति शब्द का बोधक है। जैसे रात्रि में आकाश में सूर्य का न होना अथवा घड़े में पानी का न होना अभाव है। अभाव का ज्ञान विरोधी भाव पदार्थ के ज्ञान के बिना नहीं हो सकता। जैसे आकाश में सूर्य के अभाव का ज्ञान हमें तभी होगा, जब आकाश में सूर्य के अभाव का ज्ञान रहा हो। अभाव दो प्रकार का होता है- संसर्गाभाव (जिसमें दो वस्तुओं के सम्बन्ध का निषेध किया जाता है, जैसे क ख में नहीं है। अन्योन्या भाव (दो वस्तुओं का परस्पर भेद जैसे क ख नहीं है। संसर्गा भाव तीन प्रकार का होता है- प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव और अत्यन्ता भाव। अन्योन्या भाव एक ही प्रकार का होता है। इस प्रकार अभाव चार प्रकार के होते हैं। प्रागभाव का अर्थ है उत्पत्ति के पूर्व कारण में कार्य का अभाव, जैसे उत्पत्ति के पूर्व घड़ा का अभाव। यह अनादि और सान्त है। प्रध्वंसाभाव का अर्थ है विनाश के बाद उस वस्तु का अभाव जैसे ध्वंस हो जाने पर घड़ा का अभाव। यह सादि और अनन्त है। अत्यन्ता भाव त्रिकाल में अभाव है, जैसे खरगोश में सिंग का अभाव, आकाश कुसुम आदि का अभाव। यह अनादि और अनन्त है। अन्योन्या भाव का अर्थ है दो वस्तुओं का परस्पर भेद जैसे घट पट नहीं है, कुर्सी टेबुल नहीं है। यह भी अनादि और अनन्त है। यदि अन्योन्या भाव न हो तो सब वस्तुएँ अभिन्न हो जायेगी।

वैशेषिक दर्शन में अभाव के महत्व को रेखांकित करने वाले डॉ० राधा कृष्णन के कहते हैं “ वैशेषिक दर्शन के अभाव विषयक समस्त विचार आध्यात्मिक विचारों पर अवलम्बित है। यदि वस्तुएँ केवल विद्यमान रहें और उनका आभाव न हो तो वे सब वस्तुओं तथा उनकी गतियों का आदि-रहित मानना चाहिए। यदि पश्चाद्वर्ती अभाव का हम निषेध करें तो वस्तुएँ और उनकी क्रियाएँ भी कभी नहीं रुकेगी और अंतविहिन हो जाएगी यदि अन्योन्याभाव का निषेध करते हैं तो वस्तुओं में भेद न हो सकेगा और अत्यन्ताभाव का निषेध करते हैं तो वस्तुओं को सर्वत्र सब कालों में विद्यमान मानना चाहिए।

## मीमांसा दर्शन का स्वतः प्रामाण्य वाद :-

मीमांसा दर्शन के अनुसार केवल स्मृति के लिए हमें प्रमाण की आवश्यकता हो सकती है क्योंकि यह सम्भव है कि किस पूर्व प्रसंग को याद रखने में हमसे कोई भूल हो जाये। स्मृति के अतिरिक्त किसी भी ज्ञान के विषय को प्रमाणित करने के लिए हमें अन्य ज्ञान की आवश्यकता नहीं होगी। ज्ञान अपनी सत्यता का स्वयं ही सत्यापन करता है। मीमांसक केवल प्रत्यक्ष द्वारा प्राप्त ज्ञान को ही स्वतः प्रामाण्य नहीं मानते हैं वरन अन्य प्रमाणों द्वारा ज्ञात सत्यों को भी स्वतः प्रामाण्य कहते हैं। मीमांसा दर्शन अपने पक्ष के समर्थन में दो बातें कहते हैं:-

(1) **प्रमाणं स्वतः अत्पद्यते-** अर्थात् ज्ञान की प्रामाणिकता ज्ञात वस्तु की उत्पादक सामग्री में ही विद्यमान रहती है।

(2) **प्रामाण्यं स्वतः ज्ञायते-** अर्थात् ज्ञान के उत्पन्न होते ही उसके प्रामाण्य का भी निश्चय हो जाता है।

मीमांसा दर्शन में प्रभाकर और कुमारिल दोनों स्वतः प्रामाण्य वादी हैं। प्रभाकर के अनुसार स्वतः का अर्थ है ज्ञान जनक सामग्री से। जो दोष रहित कारण सामग्री ज्ञान को उत्पन्न करती है वही सामग्री उस ज्ञान के प्रामाण्य को भी साथ ही उत्पन्न करती है। कुमारिल के अनुसार भी ज्ञान कारण दोष रहित एवं बाधक ज्ञान रहित सत्य वस्तु का ज्ञान होता है और जो सामग्री इस ज्ञान को उत्पन्न करती है वही सामग्री साथ ही इस ज्ञान के प्रामाण्य को भी उत्पन्न करती है। मीमांसकों के अनुसार प्रामाण्य की उत्पत्ति और प्रामाण्य का ज्ञान (ज्ञरित) दोनों स्वतः होते हैं। ज्ञान का प्रामाण्य और इस प्रामाण्य का ज्ञान दोनों ज्ञान के साथ ही उदित होते हैं और उसी सामग्री से उत्पन्न होते हैं जिससे ज्ञान उत्पन्न होता है। किन्तु मीमांसकों के अनुसार ज्ञान का अप्रामाण्य परतः होता है, बाहर से आता है। अप्रामाण्य का अनुमान किया जाता है। यह अनुमान कारण सामग्री के किसी दोष के कारण अथवा अन्य बाधक ज्ञान के कारण किया जाता है मीमांसा दर्शन के अनुसार सत्य सामान्य व्यवहार है, भ्रम असामान्य है। प्रामाण्य स्वाभाविक है, अप्रामाण्य अपवाद है। रज्जु में सर्प का ज्ञान बाद में रज्जु ज्ञान से बाधित हो जाता है, इसके अप्रामाण्य का अनुमान बाधक ज्ञान के कारण किया जाता है।